अध्याय : 4

विष्णु प्रभाकर के मनोवैज्ञानिक नाटकों में

चरित्र-विकृतियाँ और खण्डित व्यक्तित्व

अध्याय : 4

विष्णु प्रभाकर के मनोवैज्ञानिक नाटकों में चरित्र-विकृतियाँ और खण्डित-व्यक्तित्व

भूमिका

प्रस्तुत अध्याय में मुख्यतः विष्णु प्रभाकर के मनोवैज्ञानिक नाटकों में दृष्टिगोचर होनेवाले चरित्र विकृतियों वाले पात्रों को तथा खण्डित व्यक्तित्व वाले पात्रों को विवेचित, विश्लेषित करना हमारा प्रमुख उद्दिष्ट है। यह पात्र मनोविज्ञान के धरातल पर सही मालूम पड़ते हैं।

चरित्र-विकृतियाँ

प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे असामान्य व्यक्ति होते हैं, जिन्हे मनोविकृत व्यक्तित्व वाले व्यक्ति कहा जा सकता है। उनका व्यवहार आतंकपूर्ण एवं विध्वंसात्मक होता है। बौध्दिक दृष्टि से इस प्रकार के व्यक्ति औसत या श्रेष्ठ बुध्दि के होते हैं। परंतु इतना होते हुए भी ये लोग न तो अपने अनुभवों से लाभ ही उठा पाते हैं और न ही अपने व्यवहार को परिमार्जित कर पाते हैं।

चरित्र-विकृतियों की श्रेणी में हम उन व्यक्तियों को रखते हैं जिन्हें बहुधा लोग दुर्गुणी, दुष्ट या दुखी कहते हैं। कुछ व्यक्तियों को अगर बाहय दृष्टि से देखा जाए तो वे पूर्णतया समायोजित दिखाई पड़ते हैं, परंतु उनका सूक्ष्म निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि इनमें असंतुलन होता है। सामान्य व्यक्ति वह होता है जिसकी अहम्, इदम् व परम अहम् शक्तियों में तथा बाहय, शारीरिक एवं सामाजिक वास्तविकताओं में उचित सम्बन्ध होता है। अगर इस सन्तुलन में असंतुलन है तो इनमें असमानता उत्पन्न होती है। यह विकृति चरित्रिक विकृति मानी जाती है।

चरित्र और व्यक्तित्व का घनिष्ट सम्बन्ध है। व्यक्तित्व के असंतुलन एवं संगठन पर व्यक्तित्व अवलंबित रहता है। व्यक्तित्व के असंतुलन और असंगठन के कारण व्यक्ति का चरित्र ही बिगड जाता है या विकृत होता है।

चरित्र स्थायी भावों की एक व्याख्या का संगठन है जिस पर एक प्रधान स्थायी भाव शासन करता है। स्किनर के अनुसार, "किसी का चरित्र, जैसा कि शब्द के इतिहास द्वारा परिभाषित किया गया है, वह सब कुछ होता है जो एक पुरूष या स्त्री को अनुपम एवं प्रत्येक अन्य से भिन्न बनता है।"[1]

व्यक्ति के चरित्र में असन्तुलन पैदा होने से अनेक विकृतियों का जमघट निर्माण होता है। "चरित्र-विकृतियों से हमारा तात्पर्य उन व्यक्तियों से हैं जिनका आन्तरिक अचेतन अन्तर्द्वंद बिना मनोविक्षिप्त (Psychatic) मनस्ताप (Nearatic) या विपर्यय (Perverse) से ग्रस्त हुए विषमायोजिन या समायोजित हो जाते हैं।"[2]

मुख्यतः चरित्र-विकृतियों में निम्नलिखित लक्षण दिखायी देते हैं -

उत्केंद्र

उत्केन्द्र प्रकार के व्यक्तियों में शक्की अस्थिर प्रकृति के लोगों का समावेश किया जा सकता है। इनका जीवन अस्तव्यस्त रहता है। स्वभाव जिद्दी होता है। उनके चिन्तन, वाणी, वेशभूषा आदि से उन्हें पहचाना जा सकता है। इनमें यौन विचित्रता भी दिखायी देती है।

विकृत मिथ्याभाषी

इस प्रकार के व्यक्तियों में बिना किसी कारण झूठ बोलने की आदत होती है। इन्हें झूठ बोलने से कोई फायदा नहीं होता फिर भी झूठ बोलते रहते हैं। झूठ बोलने में इन्हें आत्मसंतोष होता है।

ठगी की विकृत आदत

इस प्रकार के व्यक्तियों में ठगी की विकृत आदत भी होती है। वह झूठों को वास्तविकता में परिणत करना चाहता है। मैं बहुत बड़ा हूँ यह सिध्द करने का प्रयास करता है।

झगडाखू प्रवृत्ति वाले

इस प्रकार के व्यक्ति का स्वभाव चिड़चिड़ा, उदण्डतापूर्ण होने के कारण अकारण झगड़ा करते हैं। विश्वासघात का आरोप लगाते हैं, गैरकानूनी व्यवहार भी करते रहते हैं।

नैतिक रूप से दोषी

इस प्रकार के व्यक्तियों में मानसिक दुर्बलता पायी जाती है। नैतिक और अनैतिक में कोई भेद इन्हें मालूम नहीं होता।

विकृत चरित्र वाले व्यक्तियों में सहानुभूति, दया, भक्ति आदि की कमी होती है। ये व्यक्ति आक्रमक बनने पर मद्य, आत्महत्या, हत्या, काम-विकृति इनका सहारा लेते हैं। इनमें पश्चाताप का अभाव पाया जाता है।

नीरू :(डॉक्टर)

श्री विष्णु प्रभाकर के "डॉक्टर" नाटक का एक नारी पात्र नीरू है जो अस्पताल में दाखिल हुई सनकी मरीजा है। इस प्रकार के व्यक्ति शककी और अस्थिर प्रकृति के होते हैं उनका मानसिक जीवन कुछ मात्रा में बिगड़ जाता है और उनमें आंतरिक एकता का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार के मनोरूग्ण व्यक्ति प्रायः अपने चरित्र की दुर्बलता विभिन्न प्रकार की चिन्ता, विषाद, प्रेरणा, उन्माद आदि प्रवृत्तियों के द्वारा प्रकट करता है। "डॉक्टर" नाटक की नीरू में ये लक्षण सहज ही दिखायी देते हैं।

नीरू के विकृत चरित्र की एक विशिष्टता यह है कि वह स्वयं पागल होकर भी खुद को आधा-पागल समझती है और लोगों को पूरा पागल समझती

है। दादा को वह पूरा पागल कहती है। इतना ही नहीं नीरू डाक्टर अनीला से यह भी पूछती है की क्या वह सचमुच पागल है ? उस समय नीरू और रामू के बीच हुए वार्तालाप से उसका पागलपन स्पष्ट हो जाता है और दूसरे को पागल समझने की उसकी सनक भी दिखायी पडती है -

नीरू : दीदी। दीदी।।। क्या मैं सचमुच पागल हूं ?

रामू : जी हां एकदम, अपनको तो यहां सभी पागल नजर आते।

नीरू : जो पागल होता है, उसे सभी पागल नजर आते हैं। (हंसती है)[3]

जब डाक्टर अनीला की सहयोगी डाक्टर सईदा नीरू को आराम करने की सलाह देती है तब नीरू अपनी सनक में एक ऐसा भाषण झाड़ देती है कि सुननेवाले चौंक जाते हैं। नीरू के शब्दों में - "अजीब बात है, आप कहते हैं आराम करो। प्रधान मंत्री कहते हैं कि आराम हराम है। मैं समझती हूं कि वे सच कहते हैं। जब से दीदी यानी डाक्टर अनीला गई है तब से यहां आप ही आप आराम हराम हो गया है। सब हिसाब लगाने लगे हैं।"[4] इसमें सन्देह नहीं यहां नीरू नर्सिंग होम के सभी कर्मचारी और डाक्टर सईदा के प्रति व्यंग्य करती हैं और भारत के प्रधानमंत्री पं॰जवाहरलाल नेहरू के आराम हराम है की खिल्ली उड़ाती है।

"डॉक्टर" नाटक की नीरू वास्तव में स्वयं एक इनडोअर पेशन्ट है। स्वयं सनकी है, स्वयं बीमार है लेकिन एक जगह वह अपनी सनक इस तरह प्रकट करती है कि डॉ॰अनीला के नर्सिंग होम के सब लोग बीमारही है। वह डाक्टर सईदा से कहती है - "जान पड़ता है डॉक्टरजी आप भी बीमार है। यहाँ सब बीमार हो गए हैं। अधिकारी भी बीमार, नौकर भी बीमार, डाक्टर भी बीमार, बेचारा बीमार····।"[5] इतना ही नहीं वह यह कहती है कि बीमार का घर नर्सिंग होम ही होता है और साथ ही साथ रंगमंच से अन्दर जाते जाते डॉ॰सईदा से कहती है की जो आप से बीमार है उन्हें पागलों की तरह सारी दुनिया पागल नजर आती है और दादा को इशारा करती हुई कहती है कि मैं जरूर जाती हूं पर दादा। इससे बीमारी बढ़ेगी ही।"[6]

नीरू के चरित्र विकृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है की वह हमेशा दूसरों की चिन्ता करती रहती है। कभी डॉ॰अनीला की, तो कभी नर्सिंग होम में दाखिल हुई मरीजा की, तो कभी नर्सिंग होम के अन्य कर्मचारियों की। नाटक के प्रारम्भ में नीरू दादा से कहती है कि वह किसीकी चिन्ता नहीं करती है इस अस्पताल में कोई भी किसीकी चिन्ता नहीं करता है। लेकिन दीदी डॉ॰अनीला ऐसी है जो सबकी चिन्ता करनेवाली डाक्टर है। नीरू की उपहास गर्भित प्रवृत्ति में उसकी व्यक्तिगत चिन्ताही सर्वप्रमुख है। नीरू के शब्दों में "चिन्ता मैं कहा करती हूं। इस चिड़ियाघर में कोई कर भी नहीं सकता। वह दीदी का काम है।"[7]

इसमें सन्देह नहीं कि नीरू 'उत्केन्द्र' प्रकार भी नारी है। उसकी सनक हर जगह उसकी चरित्र-विकृति को किसी-न-किसी रूप में प्रकट करती है।

ठाकुर (टगर)

चरित्र विकृति में "टगर" नाटक के माथुर और ठाकुर दो पुरुष आते हैं। "टगर" नाटक का ठाकुर विकृत पात्र है। वह बार-बार झूठ बोलता हुआ दिखायी देता है। टगर के सौंदर्य का फायदा अपने स्वार्थ के लिए कर लेता है। लोक गीतों को इकट्ठा करना तो उसका एक बहाना है। वास्तव में वह एक देशद्रोही है। वह आन्तर्राष्ट्रीय तस्कर टोली का एक सदस्य है। देश का दुश्मन होकर भी मेजर पुरी से ऐसी बाते करता है, सुननेवाले को ऐसा लगता है कि ठाकुर इस देश का एक आदर्श नागरिक है। ठाकुर के शब्दों में "माफ कीजिए प्रयास करता कौन है ? यदि सचमुच प्रयत्न किये जाये तो कुछ भी करना असम्भव नहीं है। पहरेदार की इच्छा के विरूध्द चोर कभी चोरी नहीं कर सकता मैं साफ बात कहने का आदी हूँ आपका शत्रु नहीं हूँ। आप या तो गफलत करते हैं या रिश्वत लेते हैं। उसके बिना भ्रष्टाचार नहीं पनप सकता, कभी नहीं पनप सकता।.."[8] वास्तव में इससे यही सिध्द होता है कि ठाकुर खुद एक बदतमीज आदमी है, ठगी है, विकृत-मिथ्याभाषी है। उसकी वाणी से यह स्पष्ट दिखायी देता है कि वह झूठ बोल रहा है। कितनी सफाई से वह अपने भ्रष्टाचार के विरूध्द घृणित भावों को व्यक्त करता है। वह लोगों को दिखाना चाहता है कि ठाकुर एक आदर्श नागरिक है

पर वही वास्तव में एक भ्रष्टाचारी है।

ठाकुर स्वयं एक तस्कर व्यापारी है। लेकिन उसके घर में मेजर पुरी के प्रवेश करते ही उसके तथा माथुर और टगर के सामने वह तस्करी पर ऐसा भाषण झाड़ देता है कि मानों वह तस्कर व्यापारी नहीं बल्कि स्वतंत्र भारत का एक आदर्श नागरिक ही है। मेजर पुरी को सम्बोधित करते हुए ठाकुर कहता है - "हाँ, मेजर साहब मैं।। कह रहा था कि किसी भी देश को बाहरी शत्रुओं से इतना डर नहीं होता जितना आस्तीन के सापों से। मेजर साहब, ये तस्कर नाग है, नाग। लेकिन दुख यही है कि ज्यों ज्यों हमारी स्वतंत्रता पुरानी होती जाती है, त्यों त्यों इनका व्यापार भी दृढ होता जाता है।"[9] इससे ठाकुर साहब की मिथ्यावादिता ही स्पष्ट होती है। यहाँ नाटककार ने ठाकुर के मुँह से यह संकेत किया है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में दिन-ब-दिन तस्करी बढ़ रही है और स्वयं तस्कर हमें तस्करी पर लंबा-चौडा भाषण देकर स्वयं तस्कर न होने का बहाना करते हैं। ठाकुर की यह आक्रमक तथा मिथ्या भाषणबाजी उसके चरित्र-विकृति का ही एक अंग है।

टगर और ठाकुर का बाकायदा विवाह नहीं हुआ है फिर भी वे दोनो एक साथ रहा करते हैं। लोगों के सामने प्यार का प्रदर्शन करते हैं। टगर की मादकता पर वह आसक्त है पर यह प्रेम, यह आसक्ति सिर्फ दिखावे के लिए ही है। वास्तव में तस्कर व्यापार के लिए टगर के सौंदर्य का फायदा होगा इसी कारण ठाकुर ने टगर को पनाह दी है। "सांध्य गगन में पुनम के चन्दा सा तुम्हारा मुख त्रिपुण्यकार बिन्दी में कैसा मादक हो उठता है, यह मैं ही जानता हूँ।"[10] प्रकृति के साथ टगर के सौंदर्य की तुलना करना यह यौन-विकृति का ही एक रूप है। शक्ल सूरत से ही ठाकुर रसिक वृत्ति का है। ठाकुर की उम्र 50 साल और टगर की उम्र 25 साल है इससे जाहिर है ठाकुर एक विकृत व्यक्ति है। उसकी नजर से नारी सिर्फ बातों से पसिजती है।

टगर को भूलावे में डालने के लिए ठाकुर हर वक्त उसके आसपास मँडराता रहता है - "अहा। यह सिंगापुरी साड़ी, यह सघन मुक्त केश राशि, ये नशीले

कजरारे नयन, लगता है जैसे प्रेमाकुला प्रकृति अभी स्नान करके आयी हो। छूते डर लगता है। साथ ही यह भी जी करता है कि इस केश राशि में मुँह छिपाकर सो जाऊं।"[11]

ठाकुर के चरित्र में विकृत मिथ्याभाषी ठगी की आदत, नैतिक रूप से दोषी ये सारे दुर्गुण ही दिखायी देते हैं। उसका सारा व्यक्तित्व इन्हीं दोषों के कारण विकृत दिखायी देता है। समाज में भी वह अपना झूठा अहंभाव दिखाता रहता है पर आखिर उसे तस्कर व्यापारी और देशद्रोही के नाते मेजर पुरी की गोली का निशाना बनना पड़ता है। इससे यही स्पष्ट होता है कि असामान्य व्यवहार करनेवाला ठाकुर "टगर" नाटक का निःसंदेह "चरित्र-विकृति" वाला पात्र है।

माथुर (टगर)

"टगर" नाटक के माथुर पात्र में भी चरित्र विकृतियाँ दिखायी देती हैं। माथुर 30 वर्षीय पी·डब्ल्यू डी·के सब डिवीजनल अफसर हैं। "टगर" इस नाटक के प्रारंभ में ही ठाकुर और टगर दोनों एक दूसरे के पास बैठे हैं। टगर ठाकुर के सिर में तेल लगा रही है तभी माथुर टगर के साथ आँखमिचोली खेलता है। उन दोनों को ऐसे प्यार करते देखकर भी वह ठहरता है। मन ही मन वह टगर को चहाता है। यहाँ उसकी विकृति ही दिखायी देती है। माथुर टगर के लिए अपने मित्र ठाकुर को भी दगा देता है। तस्कर व्यापार के गठबन्धन में ठाकुर को नकद रिश्वत भी देता है।

माथुर का वैवाहिक जीवन भी स्थिर नहीं है। वह पहले एक स्त्री से शादी का वादा करता है पर उससे शादी नहीं करता है तो वह स्त्री आत्महत्या कर लेती है। फिर पिताजी के पसन्द की लड़की से शादी करता है उसे घर में रखकर कुसुम नाम की नर्स के साथ शादी का वादा करता है और फिर भी टगर के साथ शादी के सपने देखता है। इससे स्पष्ट है कि माथुर एक विकृत चरित्र का व्यक्ति है। माथुर की धोखेबाजी से कुसुम आत्महत्या कर लेती है जिसका जिम्मेदार माथुर ही है।

कुसुम की आत्महत्या के बाद माथुर टगर को फँसाना चाहता है। पर टगर पर भी बार-बार शक करता रहता है। "यही तो मैं सोचता हूँ। तुम मेरी हो।। संपूर्ण मेरी और यही सोचकर मन शंका से भर उठता है, कहीं यह छल तो नहीं ?..."[12]

माथुर मे भी ठगी की आदत, शक्की स्वभाव, प्रदर्शन प्रवृत्ति, विकृत मिथ्याभाषी।। आदि दुर्गुण पाये जाते हैं। स्वतंत्र भारत के अफसरों ने रिश्वतखोरी की आदत है यही दिखाने के लिए यहाँ माथुर ने की रिश्वतखोरी दिखायी देती है। सड़क के मामले में माथुर रिश्वत लेता है। इन दुर्गुणों के कारण उसके आसपास के लोग उससे कतराते हैं। विमला, डॉक्टर, गहलोत. सबको माथुर बुलाना चाहता है। पर कोई उसके पास नहीं जाते हैं तो वह भ्रष्टाचार पर भाषण झाड देता है और खुद रिश्वतखोर होने के बावजूद भी लोगों पर रिश्वतखोरी का आरोप लगाता है।

माथुर अब लोगों की पोल खोलने की ठान लेता है। बुलाने पर भी उसके पास लोग नहीं आते तो उसे गुस्सा आता है। माथुर कहता है - "असल में वे मुझे सताना चाहते हैं। लेकिन वे यह नहीं जानते कि मैं किस मिट्टी का बना हूँ। मैं...मैं चाहूं तो सबकी बोल खोल दूँ।"[13]

माथुर बिना शादी किये टगर के साथ रहता है और लोगों ने ऊँगली दिखाने पर कस्बे को बुरा-भला कहके वहाँ से भाग जाना चाहता है। माथुर सामाजिक तथा नैतिक रूप से भी विकृत दिखायी देता है। खुद एक्जीक्युटिव का पद पाने के लिए टगर को अपने अधिकारी के पास भेजता है। टगर के सौंदर्य का फायदा अपने भले के लिए करना चाहता है। आखिर में वह शराब का सहारा ले लेता है। टगर को पैसे से खरीदना चाहता है - "प्यार किया नहीं जाता, कराया जाता है। दो लाख के तोहफे को वह अवश्य प्यार करेगी ? नहीं करेगी क्या ?"[14]

माथुर में अहंकेंद्रिता, ठगी की आदत, व्यभिचार करना, शराब की आदत आदि दुर्गुन पाये जाते हैं, जिनसे उसका व्यक्तितव विकृत हो गया है। इसमें संदेह नहीं कि माथुर "टगर" नाटका का चरित्र-विकृतिजन्य दूसरा सशक्त पात्र है।

खण्डित-व्यक्तित्व

मानव मन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है की वह उसके पास जो नहीं है उसको पाने की कोशिश करता है और कभी कभी उसे न पाकर व्यथित होता है। उसमें निहित इद् अतृप्त रह जाता है जिसकी वजह से व्यक्ति का व्यक्तित्व खण्डित होने लगता है। वास्तव में आज का युग टूटा हुआ, मानव मानव से कटा हुआ युग है और इसी कारण साहित्यकारों ने अपने साहित्य में अपने पात्रों के खण्डित व्यक्तित्व को चित्रित किया है। हिन्दी में प्रयुक्त शब्द खण्डित-व्यक्तित्व अंग्रेजी के (Split pers) का हिन्दी रूपान्तरण है। खण्डित व्यक्तित्व में मानव का व्यक्तित्व चटक जाता है उसमें एक तरह की दरार पड़ जाती है। या उसमें छेद हो जाता है।

रीडर्स डायजेस्ट ग्रेट इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी में खण्डित व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी गई है - "खण्डित-व्यक्तित्व एक ऐसी अवस्था है जिसके व्यक्ति या समूह दो या अधिक व्यक्तित्व प्रदर्शित करता है, जो सापेक्षतया एक दूसरे से अलग होते हैं।"[15] प्रस्तुत खण्डित-व्यक्तित्व की परिभाषा में बहुविध व्यक्तित्व प्रदर्शन की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। मानव के व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी भावनाओं, विचारों, प्रवृत्तियों और संवेगों के कारण अन्तर्विरोध की स्थितियाँ पैदा होती है। तब दो लक्षणों में असंगतियाँ जन्म लेती है और मानव का मन और संघर्ष द्वंद से त्रस्त होकर खण्डित हो जाता है।

साधारणतः खण्डित व्यक्तित्ववाले लोगों के लक्षणों में मनस्ताप, अन्तर्द्वंद, उन्माद, चिन्ता, भय, स्वप्न आदि मनोविकार किसी न किसी रूप में पाए जाते हैं। यह मनोविकार ऐसे हैं जो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को विभाजित कर देते हैं।

डॉक्टर अनीला (डॉक्टर)

श्री विष्णु प्रभाकर का "डॉक्टर" नाटक पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक है। इस नाटक में नाटककार ने यह दर्शाया है कि डॉक्टर अनीला के मन में अपने पति सतीशचन्द्र के प्रति प्रतिशोध की भावना दृढ है। मधुलक्ष्मी के रूप में वह गवार होने की कारण उसका पति उसे त्याग देता है इस त्याग के कारण वह परित्यक्ता

बन जाती है और अपनी हीनता को दूर करने के लिए वह अपने दादा के घर में रहकर डॉक्टरी करती है और स्वयं एक नर्सिंग होम अच्छी तरह से चलाती है उसका यह प्रतिशोध निःसंदेह नारी मन की मनोदशा का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह प्रतिशोध सार्थक है। लेकिन जब नयी मरीजा के रूप में सतीशचन्द्र की दूसरी पत्नी डॉ॰अनीला के नर्सिंग होम में दाखिल होती है तब डॉ॰अनीला इतनी गुस्से में आती है कि वह उसका इलाज नहीं करना चाहती है। साथ ही उसके मन में मरीजा के प्रति ईर्ष्या, क्रोध और बदला लेने की भावना तीव्रतर हो जाती है। प्रतिशोध की यह भावना इतनी तीव्र होती है कि वह अगर मरीजा का ऑपरेशन करना चाहती भी है तो उसे मार डालने का डर भी डॉ॰अनीला को सताता रहता है। डॉ॰अनीला एक ऐसी डॉक्टर है कि जो अत्यंत भावुक होकर प्रतिशोध की वजह से क्रोधित होती है लेकिन साथही साथ स्वयं डॉक्टर होने के कारण मरीला का इलाज करना, ऑपरेशन करना अपना कर्तव्य समझती है और इस प्रकार उसके मन में "हाँ - ना" का द्वंद उभर आता है। जहाँ एक ओर डॉक्टर अनीला तिलमिलाकर कहती है - "नहीं! नहीं, नहीं करूंगी मैं उसका इलाज नहीं करूंगी, मैं उसे मार डालूंगी।"[16] कहकर अपनी प्रतिशोध की भावना व्यक्त करती है। वहाँ दूसरी ओर वह यह भी सोचती है कि ऑपरेशन का इन्तजाम हो चुका है और ऐसी हालत में ऑपरेशन करना ही उचित होगा ओर अपने कर्तव्य की ओर मूड़ती है। उसकी मरीजा का ऑपरेशन न करने की भावना लुप्त होती है और वह उलझन में पड़ती है और सोचते सोचते मंच पर एकदम गिर जाती है और मैं क्या करूं ? मैं क्या करूं ? कहकर उलझ जाती है तथापि डॉ॰अनील आत्मपरिक्षण करती है और अंत में इस निर्णय तक पहुँचती है कि - "डॉक्टर होकर मैं इतनी कायर होती जा रही हूं। नहीं, नहीं, मैं कायर नहीं हूँ, मुझे वह ऑपरेशन करना है। अवश्य करना है।"[17]

ऑपरेशन के समय अनीला के मन की दिधा अवस्था दिखायी देती है - "डॉ॰अनीला शाब्बास ये सुनहरी अवसर है। अपनी इच्छा पूरी करो, अपना बदला लो, नारी के अपमान का बदला लो····मैं मधूलक्ष्मी हूँ, मुझे भूलो मत।····मैं पुरुष को तड़पते देखना चाहती हूं, बह जाने दो रक्त····वह तुम्हारी शत्रु है···

केशव की ओर न देखो।····रूको तुम सुनहरी अवसर खो रही हो, तुम आत्महत्या कर रही हो····तू नहीं सुनती···नही सुनती···तूने मधुलक्ष्मी की हत्या कर दी····अपनी प्रतिज्ञा को भूल गई।"[18]

नेपथ्य से उभरने वाली उपर्युक्त आवाज से डॉक्टर अनीला उलझन में पड़ती है और उसका व्यक्तित्व टूटने लगता है, खण्डित होने लगता है लेकिन मधुलक्ष्मी के आवाज में निहित प्रतिशोध को वह ठुकराती है और अपने डॉक्टरी व्यवसाय का ध्यान रखकर कर्तव्य बुध्दि से मरीजा का ऑपरेशन करती है, तत्पश्चात अपनी बीमार बेटी शशि को देखने के लिए तुरन्त ही चल पड़ती है।

इस तरह विष्णु प्रभाकर के "डॉक्टर" नाटक में हम देखते हैं कि डॉक्टर अनीला का व्यक्तित्व आत्महीनता, प्रतिशोध, समाज भय, विक्षिप्तता, नागरी सभ्यता से अनभिज्ञ, दिव्यक्तित्व आदि कारणों से खण्ड-खण्ड हो गया है।

अनीला में परस्पर पूरक व्यक्तित्व दिखायी देता है। "डॉ·अनीला के खण्डित व्यक्तित्व के बारे में डॉ·चन्द्रशेखर के विचार उचित मालूम पड़ते हैं - "डॉक्टर" में विभाजित व्यक्तित्व के खण्डों का परस्पर संघर्ष है। परन्तु श्री विष्णु प्रभाकर ने उसे भावना और कर्तव्य के संदर्भ में उभारा है। ये सन्दर्भ समकालीनता से जुड़े हैं। समकालीन विभाजन की ताजा पहचान इन द्वारा मिलती है। विघटित व्यक्तित्व का पूर्ण खंड मधुलक्ष्मी में है और उलट खण्ड अनीला में। पूर्व खण्ड उत्तर खण्ड के समय आत्मसमर्पण करता है और आत्म पहचान की प्रक्रिया खण्डित हो जाती है। यह हमारा समकालीन यथार्थ लगभग नहीं है।"[19]

इसमें सन्देह नहीं कि "डॉक्टर" नाटक में अनीला का व्यक्तित्व दो क्रिया-कलापों में विभाजित है - 1· मधुलक्ष्मी के रूप में प्रतिहिंसात्मक। और 2· डॉक्टर अनीला के रूप में कर्तव्य परायण भावना से युक्त।

टगर (टगर)

"टगर" नाटक की नायिका टगर पति के परित्याग करने पर विवश होकर ही क्रमशः ठाकुर साहब, माथुर साहब और नाजिम साहब के साथ रहती है। प्रासंगिक रूप में प्रेम का नाटक रचती है। पुरूष जाति के प्रति प्रतिशोध की भावना व्यक्त करने के लिए वह इस तरह का बर्ताव करती है लेकिन नाटक के तीसरे अंक के अंत में टगर के मन में उलझन पैदा होती है कि वह मनःस्ताप से ग्रस्त होती है और पश्चाताप दग्ध स्थिति में अपने दोनों व्यक्तित्व रश्मिप्रभा और टगर के साथ टकरतारी रहती है उसका यह अंतर्द्वंद खण्डित व्यक्तित्व के रूप में परिणत होता है टगर के शब्दों में - "कहाँ वह भोली-भाली बुध्दु-सी रश्मिप्रभा, कहाँ यह टगर - जितनी निर्भीक, उतनी ही निर्दय। क्या यह सच है ? क्या मैं वही हूँ, जो कभी थी ? क्या मैं जो होने जा रही हूँ, वह भी सच होगा ? मैंने वह सब कैसे किया ? कैसे यह सह पाऊंगी अपने इस अनागत को····?"[20]

यद्यपि ठाकुर, माथुर और नाजिम से टगर तंग हो जाती है फिर भी उसके मन में अपने पति के प्रति प्यार उमड़ आता है। नाजिम के द्वारा अपने पति की निंदा सुनकर वह गुस्से में आती है और दृढता से अपने पति के बारे में प्रेम व्यक्त करती है और जोर-जोर से रोने लगती है। वह नाजिम से कहती है - "···मैं नहीं जानती कि मैं उसे प्यार करती हूं या नहीं करती, लेकिन इतना अवश्य जानती हूँ कि जब कोई मेरे सामने उसकी निंदा करता है तो मैं परेशान हो उठती हूँ। उसकी निंदा करने का अधिकार मुझे है, केवल मुझे हैं, मैंने ही तो सहा है। कहते-कहते फूट पड़ती है। "[21] टगर का यह रोना उसके खण्डित व्यक्तित्व का ही द्योतक है।

नाजिम के विवाह के प्रस्ताव को टगर दृढता से ठुकराती है। इसका प्रमुख कारण उसके मन में "पति" शब्द के प्रति नफरत है। वह नाजिम से कहती है - "अभी मैं तुम्हारी प्रेमिका हूं लेकिन जब तुम कानून की दृष्टि से मेरे पति हो जाओगे तो तुम बदल जाओगे। तुम स्वामी, भर्ता, परमेश्वर···न जाने क्या-

क्या रूप धारण कर लोगे। तुम कुरेद-कुरेद कर मेरे आत्मसमर्पण की बात नहीं पुछोगे? नही पूछोगे कि क्या मेरा कोई और प्रेमी था···? मैं अभी सोच सकती हूँ।"[21] यहाँ हम देखते हैं कि टगर फिर से वह आत्महीनता का अनुभव नहीं लेना चाहती है। इसी दिधा अवस्था में वह नाजिम का घर भी छोड़कर चली जाती है। यहाँ दिखायी देता है कि टगर का व्यक्तित्व सामाजिक, नैतिक दृष्टि से पूर्ण रूप से खण्ड-खण्ड हो गया है। टगर भी अपने जीवन में आये संघर्षों से टूट चुकी है। वह रोती हुई नाजिम से विदा लेती है। टगर का व्यक्तित्व आत्मविश्लेषणवादी समस्या पर आधारित खण्डित व्यक्तित्व है।

उमा बन्दिनी

डॉ·विष्णु प्रभाकरजी ने "बन्दिनी" नाटक में उमा का पात्र बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। उमा एक भोली, भाली, सुन्दर युवती है। उसकी शादी बचपन में ही हुई है। वह जमींदार कालीनाथ राय के घर की नववधु बनकर आयी है। कालीनाथ राय के छोटे बेटे सुरेन्द्र की पत्नी बनकर उमा खुश है। पर यह खुशी ज्यादा दिन नहीं रह सकी। पति सुरेन्द्र उमा को दिलोजान से चाहता है। पर कालीनाथ राय एक नम्बर के अन्धविश्वासी है। उन्होंने एक दिन सपने में देखा कि देवी माँ उन्हें आदेश देती है 'मैं तुम्हारे घर में उमा के रूप में अवतरित हो गयी हूँ।' तब कालीनाथ राय बहू के चरण छूते हैं उसे देवी माँ मानकर पूजागृह में बन्दी बनाते हैं। उमा छोटी बहु है वह यह सब सह नहीं सकती। वह अपनी जेठाने से कहती है - " ···आज मुझे लगता है एक दिन मैं इन लहरों में समा जाऊंगी। मेरे कारण मेरा अनु पिटता है। वे मुझसे हमेशा-हमेशा के लिए बिछुड गये हैं। जीजी, मैं तुम्हारे पैर पडती हूं मुझे बचा लो, मुझे यहां से निकालने का कोई न कोई प्रबन्ध करो।"[23]

उमा में विकलता आ जाती है। वह अपनी भावनाओं को दमित करती है और अपने आपको देवी माँ समझ लेती है। आसपास के गाँव के लोग भी उसके पास अपना दुख लेकर आते हैं। उमा उनके दुःखों का निवारण करती रहती है।

उमा के खयाल से पुंटी का बेटा, विश्वेश्वरी की बेटी उमा के कारण ही अच्छे हुए हैं। वह अपने पति को भी पहचानने से इन्कार कर देती है। वह अपनी सांसारिक भावनाओं का दमन करती दिखायी देती है। बाद में वह अंन्धविश्वास में इतनी गिरती जाती है कि सावित्री के बेटे अनु को उसके कारण ही तेज बुखार होने पर भी उमा उसे दवा नहीं देने देती। अपना चरणामृत ले जाकर देने के लिए कहती है। जिस अनु के बिना वह रह नहीं सकती थी। उस अनु को तड़पता हुआ अपनी गोद में लिए रहती है। देवी माँ उसे अच्छा कर देगी यह विश्वास लेकर वह चरणामृत पिलाती रहती है। पर आखिर अनु अपनी चाची उमा की गोद में दवा के अभाव में मर जाता है। तभी उमा में अपराध भावना उत्पन्न हो जाती है। विफलता, अस्तित्व की विवशता, ईर्ष्या, आदि के कारण अपराध भाव पाया जाता है। अपराध भावना से पीड़ित व्यक्ति अपनी अपराध भावना से मुक्त होना चाहता है और हम देखते हैं कि नाटक के अन्त में उमा आत्महत्या कर लेती है।

परवशता - मानव हर बात के लिए किसी न किसी पर अवलंबित होता है। इस परवशता का फायदा कुछ लोग लेते हैं। यहां बन्दिनी इस नाटक में हम देखते हैं कि उमा भी परवशता में जकड़ी है। जमींदार कालीनाथ राय की हुकूमत सारे घर पर चलती रहती है। कालीनाथ राय अपने सपने के अनुसार उमा को देवी माँ समझकर पूजा गृह में बन्द कर देते हैं तब उमा बन्दिनी बन जाती है। उसे उस बन्दि गृह से कोई नहीं निकाल सकता उमा के पति सुरेन्द्र भी उसे पिताजी की कैद से छूडा नहीं सकता - "पिताजी यहां स्वयंभू प्रभु है। उन्हें समझाने का साहस कोई नहीं कर सकता।"[24] तब निराशा से उमा अपने आपको अन्धविश्वास के हवाले कर देती है। यहां हम देखते हैं कि उमा परवशता के कारण ही ऐसा करती है।

परवशता, आत्महीनता तथा अपराध भावना के कारण उमा का जीवन उद्ध्वस्त हो जाता है। अपना बिखरा हुआ जीवन लेकर उमा जीना नहीं चाहता तब अपराध भावना को लेकर वह गंगाजी में कूद कर आत्महत्या करती है। यहां उमा का व्यक्तित्व खण्ड-खण्ड होता दिखायी देता है।

अन्य पात्र

खण्डित व्यक्तित्व वाले अन्य पात्रों में "बन्दिनी" नाटक के सावित्री, सुरेन्द्र और कालीनाथ राय का समावेश किया जा सकता है।

सावित्री (बन्दिनी)

कालीनाथ का नाती और सावित्री का बेटा अनु बीमारी के कारण वैद्यकीय इलाज न होने से मर जाता है और इसका नतीजा यह होता है कि इस नाटक में सर्वप्रथम अनु की माँ सावित्री टूट जाती है। उमा के गोद में अनु को मरा हुआ देखकर सावित्री टूट जाती है। जिस उमा से सावित्री पहले प्यार करती थी वह अब अपने बेटे की मृत्यु के कारण दुखी होकर उमा को ही गलिया देने लगती है। (क्रोधपूर्वक) - "अरी कुटिल डायन! जिसको प्यार किया उसी को डस लिया तूने यह ढोंग मेरी कोख को उजाड़ने के लिए ही किया ? तेरी कोख जो हरी नहीं हो रही थी, इसीलिए।"[25] इस तरह से सावित्री अपने बेटे को देखकर पूरी तरह टूट जाती है। आखिर में तो उसका बेटा मर जाता है तो वह पागलों जैसी अनु को लेकर भागती है।

सुरेन्द्र (बन्दिनी)

सुरेन्द्र अपने पिताजी कालीनाथ राय पर अपना गुस्सा उतार लेता है और अनु की मृत्यु से दुखी होकर टूट जाता है सुरेन्द्र की व्यथा देखिए - "पिताजी, आपके झूठ ने, आपके अंधविश्वास ने आपके ही वंश का नामशेष कर दिया। अब नरक की यातनाएँ ही आपका हिसाब करेंगी।"[26] अनु के कारण सुरेन्द्र की अवस्था भी खण्ड खण्ड हो जाती है। बाद में पत्नी उमा के मरने के उपरान्त भी उसका व्यक्तित्व ही खण्डित हो जाता है।

कालीनाथ (बन्दिनी)

कालीनाथ राय अंधश्रध्दालू है। अपने स्वप्न के अनुसार वह उमा को साक्षात देवी समझता है। और अपने ही घर में पूजा मंच खड़ा कर उसमें उमा

को देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर उसकी पूजा-अर्चा करता है। गाववालों के दुख हरण करने के लिए उमा का चरणामृत पिलाता है और अंत में अनु बीमार पड़ने पर उसका वैद्यकीय इलाज नहीं करवाता है और अनु की मृत्यु ईश्वर इच्छा मानता है। "अनु को जाना ही था उसकी यही नियति थी। सर्व शक्तिमान देवी की इच्छा ही नियति है, वही जगत् का संचालन करती है।"[27]

इस दुःख पूर्ण उद्‌गार में स्वयं कालीनाथ भी टूट जाता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है -

1. श्री विष्णु प्रभाकर ने अपने मनोवैज्ञानिक नाटकों के माध्यम से यह दर्शाया है कि इस विराट विश्व में कुछ ऐसे व्यक्ति होते है कि जो चरित्र-विकृति वाले होते हैं।

2. विवेच्य नाटकों में सनकी मरीजा नीरू, तस्कर व्यापारी ठाकुर, रिश्वतखोर अधिकारी माथुर चरित्र विकृतियों के जिवंत उदाहरण है।

3. यह ऐसे पात्र है कि जो लापरवाही से अपना जीवन बिताते हैं। विशेषतः ठाकुर और माथुर नैतिकता की दृष्टि से गिरे हुए और आत्म प्रशंसा से भरे हुए तथा समाज को ठगाने फसाने और लुटने वाले विकृत पात्र हैं।

4. विवेच्य नाटकों में यह भी दिखाया देता है कि कुछ ऐसा पात्र है जिनका व्यक्तित्व खण्डित हुआ है। जब किसी व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन टूट जाता है तब ऐसे लागों का व्यक्तित्व खण्डित होता है।

5. विवेच्य नाटकों में खण्डित व्यक्तित्व वाले प्रमुख पात्रों में डॉ॰अनीला, टगर, उमा, विशेष उल्लेखनीय है। गौण पात्रों में सावित्री, सुरेन्द्र तथा कालीनाथ राय का उल्लेख किया जा सकता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि विष्णु प्रभाकर के विवेचित मनोवैज्ञानिक नाटकों में मानव मन की दूर्बलता, विविधता द्वंद्वता, आत्महीनता, दृढता आदि ऐसी शक्तियाँ दिखायी देती है एक ओर मानव के व्यक्तित्व को खण्डित कर देती है और अपवार रूप में विधायक भी बना देती है इस दृष्टि से डॉ·अनीला टूटा हुआ पर कर्तव्य से जुड़ा हुआ विधायक नारी पात्र है। अन्य उपरनिर्दिष्ट पात्र पूरी तरह से टूटे हुए पात्र है जो आज के समाज के टूटन घूटन को व्यक्त करनेवाले हैं।

सं द र्भ

1· असामान्य मनोविज्ञान के मूल आधार : डॉ·लाभसिंह, डॉ·गोविंद तिवारी, पृ·428, च·संस्क·1982 ई·

2· असामान्य मनोविज्ञान के मूल आधार - डॉ·लाभसिंह, डॉ·गोविन्द तिवारी, पृ·429, च·संस्क·1982 ई·

3· डॉक्टर - विष्णु प्रभाकर, पृ·38, संस्क·अनुल्लेख्य

4· वही, पृ·10

5· वही, पृ·26

6· वही, पृ·59

7· वही, पृ·10

8· टगर - विष्णु प्रभाकर , पृ·27, संस्क·1986 ई·

9· वही, पृ·26

10· वही, पृ·20

11· वही, पृ·24

12· वही, पृ·54

13· वही, पृ·47

14· वही, पृ·60

15. (1) A condition in which in individual or group manifests two or more relatively distinct personalities.

(2) Such an individual or group.

(3) Loosely, Schizophrenia.Ed.Dr.Robert, Iloson, Reader's Digest Great Illustrated Dictionary, Ed.1984, P.1612.

16. डॉक्टर - विष्णु प्रभाकर, पृ.22, संस्क.अनुल्लेख्य

17. वही, पृ.32

18. वही, पृ.127

19. समकालीन हिन्दी नाटक - कथ्य चेतना, डॉ.चन्द्रशेखर, पृ.445, संस्क.1992ई.

20. टगर - विष्णु प्रभाकर, पृ.74-75, संस्क.1986 ई.

21. वही, पृ.73

22. वही, पृ.84

23. बन्दिनी - विष्णु प्रभाकर, पृ.43, संस्क.1991 ई.

24. वही, पृ.45

25. वही, पृ.76

26. वही, पृ.77

27. वही, पृ.77